# भारतीय धर्माचार की संहिता पुरुषपरीक्षा

[illegible] झा

विद्यापति की पुरुषपरीक्षा तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान रखनेवाली पुस्तक है। कारण, पुस्तक में धार्मिक पक्ष बड़ा सबल होकर उभरा है।[1] सम्पूर्ण पुस्तक में जगह-जगह विभिन्न देवी-देवताओं की वन्दना एवं धर्म-चर्चा अनेक रूपों में की गई है, फिर भी प्रधानता शिव और शक्ति की है। देवी-देवताओं के वर्णन क्रम में निबन्धकार विद्यापति की धार्मिक समन्वयवादिता की भावना सहज ही झलक उठी है। कहना होगा कि विद्यापति समन्वयवादी कवि थे। इसीलिए, वे मंगलाचरण में ही आदि शक्ति को नमन करते हुए कहते हैं :

ब्रह्मापि यां नौति नुतः सुरौघै-
र्यामर्चितोऽप्यर्चयतीन्दुमौलिः ।
यां ध्यायति ध्यानगतोऽपि विष्णु-
स्तामादिशक्तिं शिरसा प्रपद्ये ॥ १ ॥

आदिशक्ति शिव की पूज्या, विष्णु की ध्येया और ब्रह्मा की आराध्या है। यहाँ आदि-शक्ति की व्यापकता दिखाई गई है। क्योंकि भक्त मात्र को एक आदि-शक्ति की आराधना से ही शिव, विष्णु और ब्रह्मा की आराधना का फल उपलब्ध हो जाता है। यहाँ भी समन्वयवादी कवि ने अपनी उदार भावना को ही अंकित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के चतुर्थ परिच्छेद में विद्यापति ने [illegible] धर्म के विवेचन में, विष्णु और महेश के समन्वित रूप का दिग्दर्शन कराया है। जैसे :

विष्णुं केऽपि निर्विकल्पक [illegible] च केचिज्जना,
ब्रह्माणं [illegible] भूयते [illegible] शिवः महः ।
चिन्वन्ति मुनिभिः [illegible],
[illegible] ॥ १० ॥[2]

अर्थात्, शिव ही एक ईश्वर है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश एक हैं। तीनों का तात्त्विक भेद नहीं ही है। इस नाम भेद की तात्त्विकता का [illegible] का भ्रम है। जो केवल अज्ञानी जानते हैं। जो विवेकशील बुद्धिवाले ऋषि मुनि चिन्तन करते हैं। अतः तद्गत विद्वानों में [illegible] देवों के प्रति विवाद की भावना कभी उत्पन्न नहीं हो सकती।

---

१. महाकवि विद्यापति, सम्पादक, [illegible], पृ० २५७।
२. पुरुषपरीक्षा, [illegible], पृ० १२५।

इस श्लोक में सनातन काल से प्रचलित विद्यापति के ईश्वर-विषयक दार्शनिक सिद्धान्त की साकार-प्रत्यक्ष-भावना लक्षित है। विद्यापति की प्रस्तुत शिव-विषयक समन्वयवादी भावना की मनोरमता से यह संकेत मिलता है कि उन्होंने अपनी इस समर्थ कृति, पुरुषपरीक्षा की रचना अपनी प्रौढ़ अवस्था में की थी और उन्होंने अपने कुछ मैथिली पदों की रचना भी प्रायः इसी परिणत अवस्था में की थी; इसीलिए पुरुषपरीक्षा तथा कुछ पदावली में हमें एक ही समन्वयात्मक दार्शनिक भावना के दर्शन होते हैं।

पुनश्च, इसी ग्रन्थ में एक स्थल पर मुनि द्वारा राजा की शंका को शान्त करने के प्रसंग में विद्यापति कहते हैं कि इस संसार में ईश्वर एक ही है और संसार में जो कुछ है, वह उसी के द्वारा निर्मित है—'एको [illegible] च जगदुपनिबन्धनम्'। ईश्वर-विषयक सर्वसाम्य सिद्धान्त यही था और वे स्वयं एकेश्वरवादी थे।

जैसे विद्यापति के मंगलाचरण को उद्धृत कर [illegible] ('माधुरी', [illegible]) विद्यापति को शाक्त सिद्ध करने का प्रयास किया है। लेकिन, यह उनका भ्रम है। कारण, इसी पुस्तक में विद्यापति ने शिव की महत्ता के साथ ही काशी की महत्ता भी सिद्ध कर दी है।

कथाप्रसंग, [illegible] नामक दिवंगत राजा को जब धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न हुई, तब विद्यापति ने उसके शिव की उपासना की अभिव्यक्ति कराई है:

[illegible] ।
[illegible] ॥ ६३ ॥

राजा ने कहा, आज से मैं [illegible], अर्थात् [illegible] के गुरु शिव के चरण-कमल में चित्त को [illegible], तमोगुण को रोककर, अपने जीवन को बिताऊँगा।

आगे चलकर विद्यापति मोक्ष-कथा में शिव-भक्त और काशी में मरने वालों को मोक्ष का अधिकारी मानते हैं। यथा,

[illegible] ।
[illegible] मोक्षः [illegible][1] ॥ २ ॥

काशी में शरीर त्याग करने से, [illegible] से और [illegible] की भक्ति से [illegible] (तत्त्ववेत्ता) को मोक्ष प्राप्त होता है। इसीलिए, कुछ लोग तत्त्वज्ञान को ही मोक्ष मानते हैं—

"केचित् तत्त्वज्ञानादेव मोक्षमेव वदन्ति । [illegible] । तत्त्वज्ञानात् [illegible] मोक्षः [illegible] इति विशेषः ।"

विभिन्न पुराणों-उपपुराणों से भी उपर्युक्त बातों का समर्थन हो जाता है। '[illegible]'[2] और '[illegible]'[3] में कहा गया है कि काशी में मृत्यु होने से इसी जीवन में परम मोक्ष प्राप्त हो जाता है। [illegible] मोक्ष नहीं पाते, किन्तु [illegible] व्यक्ति की [illegible] हो जाता है।

१ [illegible], [illegible] पृ० [illegible]।
२ [illegible], [illegible]।
३ [illegible], [illegible]।

मणिकूट में निवास करने से भोग एवं मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाते हैं ( कालिकापुराण, ८०१. १९, ६१ )। अन्य से बढ़ एवं नरक मिल सकते हैं, किन्तु मणिकूट में जाने से कभी भी नरक नहीं हो सकता।[1]

विद्यापति के अनुसार मोक्ष एक प्रकार का है, किन्तु मुमुक्षु या मोक्षकामी तीन प्रकार के होते हैं— निर्लोभी, निःस्पृह एवं कामविरति।

निर्लोभी निःस्पृहश्चैव कामविरहितस्तथैव च ।
मोक्ष एकविधः प्रोक्तस्त्रिविधस्तु मुमुक्षवः ॥ ३ ॥[2]

नैयायिक विद्यापति पुनः मोक्ष-प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए कहते हैं कि एक उपाय वेद-अध्ययन है। सर्वप्रथम आत्मा को देखें, सुनें, मनन करें, निदिध्यासन करें—साक्षात् करें। तात्पर्य यह कि पहले वेदवाक्यों के द्वारा आत्मा का श्रवण करना, पश्चात् वेद के वाक्यों से बोधित जो अर्थ है, वह कैसा है अथवा नहीं यह तर्क पूर्ण अनुमान से जानना चाहिए। कहा भी गया है।

सम्प्रज्ञातेऽपि निष्पन्नः परं ध्यानमवाप्नोति, ध्यानेन च ततस्तं ध्येय इति दर्शयेद्बुधः ।

अर्थात्, जो सम्यक् ज्ञान-निष्पन्न है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् वह आत्मा का ध्यान करता रहे। इस प्रकार मन धीरे-धीरे विषयों से विनिवृत्त हो निर्विकल्पता को प्राप्त हो जाता है और मन भी इसी में लीन हो जाता है। यही मुक्ति का उपाय है। उपनिषद् का भी यही कथन है:

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवर्जितम् ॥ ६ ॥
निरस्तविषयासङ्गं संनिरुद्धं मनो हृदि ।
यदा यात्यमनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ १० ॥

अर्थात्, मन दो प्रकार के कहे गये हैं—शुद्ध और अशुद्ध। अशुद्ध वह है, जिसमें काम संकल्प-वृत्ति की कामना रहे। कामना से रहित मन शुद्ध है। विषय की आसक्ति से रहित मन जब हृदय में समाहित होकर निरोध हो जाता है, तब वह परमपद प्राप्त करता है। कारण, 'मनसस्तु विषयासक्ती दुर्निवार्यः। यदि निर्विषये मति सुलभ एव मुक्तिः स्यात्।' अर्थात् विषय के प्रति मन की आसक्ति छूटते छूटती नहीं है। मन विषय-रहित हो, तो मुक्ति का मार्ग सुगम हो जाता है।

इसीलिए विद्यापति योगियों को निर्लोभी बनने के लिए भी कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि—इन आठों अंगों से सम्पन्न योग[3] के साधन करनेवाले योगाभ्यासी निर्लोभी कहलाते हैं।

निर्लोभ्यानामपि तपस्विनः संपूर्णाः सम्पन्ना भवन्ति नराः,

१. कालिकापुराण, ८०५-६३ = कामरूप-खण्ड, ६०.११; विस्तृत वर्णन के लिये द्रष्टव्य, [illegible] का इतिहास, अनुवादक अर्जुन चौबे काश्यप, भाग, ३, पृ० २२२७-५० ।
२. पुरुषपरीक्षा, सम्पादक, [illegible], पृ० २३५ ।
३. [illegible] ।

भिक्षाशनमपि [illegible] प्राप्यन्ति [illegible] ।
मोक्षाभ्यास[illegible] [illegible]
पुनर्जन्म परमं पदं मुमुक्षवः प्राप्नुवन्ति [illegible] ॥ ६२ ॥

किंच, इसी प्रकार मुमुक्षु की चर्चा में कहा गया है कि 'तृष्णापरित्यागे सति सम्यग्ज्ञानं मोक्षसाधनम्', अर्थात् तृष्णा का परित्याग करने के पश्चात् सम्यग् ज्ञान मोक्ष का साधक है।

मुनि और राजा के प्रश्नोत्तर के पश्चात् इसी परिच्छेद में धर्म की परिभाषा और धर्माचरण—सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालते हुये विद्यापति ने कहा है कि :

[illegible] वेदवाक्यानुसारतः ।
[illegible] धर्मविशेषो यदि दृश्यते ॥ ८ ॥

यज्ञ, अध्ययन, दान आदि वेदवाक्य के अनुसार आचरित कर्म-विशेष ही धर्म है। पुनश्च, वे कहते हैं कि वेद-बोधित जो धर्म है, वही समीचीन है—'वेदबोधितो धर्म एव समीचीनः।'

उन्होंने केवल ईश्वर-पूजा को ही धर्म नहीं कहा है, कुल परम्परागत धर्म को भी विहित कहा है। अर्थात् भगवान की इच्छा से जिसने जिस कुल में जन्म लिया है, उसमें जो धर्म परम्परा से देखा जाता है, उसके लिए वही करणीय है; क्योंकि वही कुलाचार उसके लिए वही धर्म है—किन्तु [illegible] कुलाचार। एष एव हि धर्मः। यदि उस धर्म के कोई प्रमाण हो, तो उसके [illegible] विचारणा नहीं चाहिये। उनके कुलोचित धर्म का आचरण करने वाले का कोई दोष नहीं है।

इसी प्रसंग में विद्यापति ने पुनः कहा है कि 'तत्र [illegible] धर्मः।' अर्थात् जपयज्ञ, व्रत, पूजा, स्नान आदि के द्वारा ईश्वर की आराधना करना ही धर्म है। 'तं धर्मं कुर्वते यः स धार्मिकः।' अर्थात् इस धर्म का आचरण करनेवाले ही धार्मिक हैं। वे तीन प्रकार के होते हैं—सात्विक, राजस और तामसी।

सात्विक पुरुष को वही करना चाहिए, [illegible] वह सात्विक और तपस्वी के विरक्त रहने वाला कहलाता होता है। ऐसे 'सात्विक' के लिए [illegible] रहती है। [illegible] जाकर उसे अपनी [illegible] देती है[1]।

तत्काल प्रवृत्ति होने पर आग्रह से धर्म के आचरण में जो लग जाता है, वह रजोगुण से युक्त रहने के कारण 'राजस' धार्मिक माना जाता है :

[illegible] तप्यते [illegible] ।
रजोगुणेन [illegible] धार्मिको [illegible] ॥

जैसा तामसी स्वर्ग का भागी होता है। जो पाप करने के बाद पुनः पश्चात्ताप करके पाप से विमुख होकर धर्म का आचरण करता है, वह 'तामसी' धार्मिक कहलाता है :

१ पुरुषपरीक्षा, [illegible]

I. I. 62-63.

प्रायः कृतानुतापेन पुंसः पापपराङ्मुखः ।
[illegible] ॥ १ ॥

और, क्रोध आदि दोष से दूर, दया आदि गुण से युक्त तथा विषयादि से रहित जो बुद्धि-विचार है, वही 'निस्पृह' कहलाता है :

क्रोधे द्वेषादिनिर्मुक्तो गुणैर्युक्तो दयादिभिः ।
[illegible] विषयेभ्यश्च निःस्पृहो मुनिरुच्यते ॥ २ ॥

ऐसे लोगों के लिए सब धन मिट्टी के ढेले के सदृश, सब स्त्री माता के सदृश और सब जीव मित्र के समान होते हैं । उसके हृदय में पराईपन का भाव कभी उठता ही नहीं है :

[illegible] लोष्ठवत् [illegible] ।
बान्धवाः सुहृदः सर्वे परबुद्धिर्न कुत्रचित् ॥

विद्यापति ने धर्म, धार्मिक कार्यों एवं विशुद्ध अन्तःकरण को सर्वोपरि माना है । उनकी मान्यता है कि धर्म के प्रति आस्था एवं मानसिक शुद्धि होनी चाहिए :

[illegible] कुर्वताम् ।
[illegible] भवेद्बुद्धिर्विना तेन विफलं [illegible] ॥

धर्म, अर्थात् [illegible] भाव का [illegible] करनेवाले की जब धर्म में प्रवृत्ति हो, तभी उसके लिए शुभ दिन है । कारण,

[illegible] ।
[illegible] ॥ १३ ॥

[illegible] जो धर्म की आराधना करता है, उसी [illegible] स्वर्ग के लिए और सुख के लिए [illegible] होता है । कारण, जैसे औषधि से रोगी की व्याधि दूर होती है, वैसे ही पुण्य से पापी का पाप नष्ट हो जाता है :

भैषज्येन यथा व्याधिर्नश्यत्यतिरोगिणः ।
पुण्येनापि तथा [illegible] पापं नश्यति पापिनः ॥

अतः विद्यापति ने यहाँ 'धर्मे भवेद् बुद्धिः' एवं '[illegible]' पर अधिक बल दिया है । उनका मत है कि [illegible] करने वाले का कभी विनाश नहीं होता । उसे कलंक नहीं लगता; क्योंकि वह सत्य एवं धर्म पथ पर रहता है । 'पुरुषपरीक्षा' में राजा को उपदेश दिया गया है कि वह धर्म अर्जन करे—'[illegible]' । क्योंकि राज्य का कारण धर्म है—'धर्मो राज्यस्य कारणम्' । राज्य भी धर्म ही है—'[illegible]' । इसप्रकार, निःस्वार्थ-भावना एवं मानव-कल्याण सबसे उत्तम धर्म है :

न [illegible] कालो [illegible] ।
[illegible] धर्मो न [illegible] ॥

[illegible]

# THE JOURNAL
OF THE
# BIHAR RESEARCH SOCIETY
## L. N. MISHRA COMMEMORATION VOLUME

Vols. LXIII-LXIV 1977-1978



*Chief Editor*
Professor Upendra Thakur

*Editor-in-Charge*
Dr. K. K. Mandal


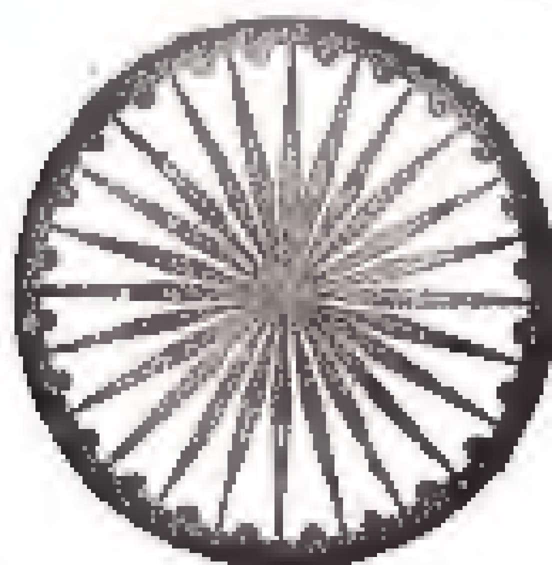


PUBLISHED BY
THE BIHAR RESEARCH SOCIETY
PATNA